

## 66 यूनीफाइड अर्थशास्त्र—द्वितीय वर्ष (चतुर्थ सेप्टेम्बर)

(1) प्राकृतिक संकटों को दूर करने के लिए—सरकार को प्राकृतिक संकटों को दूर करने के लिए जैसे अप्रत्याशित आकार में सार्वजनिक ऋण प्राप्त करने पड़ते हैं। अकाल, बाढ़, महामारी, ज्वारभाटा आदि जैसे अप्रत्याशित आकार में संकटों के समय देश की अर्थव्यवस्था अस्त-व्यस्त हो जाती है, अतः देश की जनता पर करारी प्रगति करना नहीं होता है, इसलिए ऐसे समय में सरकार आनंदिक अथवा बाह्य स्रोतों से ऋण प्राप्त करके अपने कामों पूरा करती है।

(2) उत्पादन कार्यों के सम्पादन हेतु—देश के प्राकृतिक संसाधनों का अधिकतम उपयोग करने के देश के आर्थिक विकास के लिए उत्पादक कार्य हेतु भी सरकार को ऋण लेने पड़ते हैं। एक अल्पविवरण में अर्थव्यवस्था में ऐसे ऋण लेना और अधिक आवश्यक होता है क्योंकि वहाँ एक तो पूँजी का अभाव होता है दूसरे व्यक्तियों की आय कम होने के कारण अधिक कर सम्भव नहीं होता है।

(3) सार्वजनिक उपक्रम एवं सार्वजनिक निर्माण कार्य हेतु—सरकार अपने द्वारा चलाये जाने वाले उपक्रमों एवं सार्वजनिक निर्माण कार्यों के लिए भी ऋण प्राप्त करती है। ऐसे कार्य भी उत्पादक होते हैं तथा सरकार को इनसे आय प्राप्त होती है अतः इन्हें कुशलता के साथ संचालित करने का दायित्व भी सरकार का होता है।

(4) लोक-कल्याणकारी राज्य की स्थापना हेतु—आधुनिक काल में प्रत्येक देश की सार्वजनिक लोक-कल्याणकारी राज्य की स्थापना के उद्देश्य को स्वीकारती है। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सरकार को शिक्षा स्वास्थ्य, आवास आदि जनोपयोगी सेवाओं पर अधिक व्यय करना होता है। जिसके लिए उसे ऋण प्राप्त करने पड़ते हैं। ध्यान रहे, इन सेवाओं से प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन में कोई वृद्धि नहीं होती है किन्तु दीर्घकाल में उत्पादन-शक्ति में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है।

(5) समाजवादी समाज की स्थापना हेतु—आधुनिक समय में अधिकांश राज्यों की प्रवृत्ति समाजवादी समाज की स्थापना की ओर है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु राज्य व्यापार तथा उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर देते हैं तथा उनका संचालन स्वयं कर रहे हैं। इन उद्योगों के संचालन हेतु बहुत बड़ी मात्रा में पूँजी की आवश्यकता होती है जिसकी पूर्ति केवल ऋणों द्वारा ही सम्भव हो सकती है।

(6) युद्धकालीन वित्त-व्यवस्था हेतु—युद्ध और उससे भी अधिक युद्ध का भय (शीत-युद्ध) सार्वजनिक ऋणों की आवश्यकता का एक प्रमुख कारण है। युद्ध तथा रक्षा-सम्बन्धी व्यवस्था अत्यधिक महँगी है जिसका केवल करों के द्वारा पूरा नहीं किया जा सकता इसलिए सार्वजनिक ऋण युद्धकालीन वित्त-व्यवस्था का एक प्रमुख अंग बन जाता है।

(7) लोकमत को अनुकूल बनाने हेतु—सरकार को ऋण उस समय भी प्राप्त करने पड़ते हैं जबकि की आशंका होती है। कभी-कभी सरकार जनता की करदान-क्षमता अधिक होने पर भी करों की दरों में वृद्धि नहीं होती है तथा ऋण लेकर अपने कार्यों को पूरा करती है। ऐसा प्रायः सरकार उस समय करती है जब तक इस नीति को अपनाने से राष्ट्र की अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

(8) मन्दी-काल को दूर करने हेतु—मन्दी उस दशा को कहते हैं जबकि वस्तुओं तथा सेवाओं के कारण व्यक्ति पूँजी का विनियोजन नहीं करना चाहते क्योंकि भविष्य में लाभ-प्राप्ति की आशा नहीं होती है। ऐसे स्थिति को दूर करने के लिए वस्तुओं तथा सेवाओं की माँग में वृद्धि करना आवश्यक है और ऐसा उस समय सम्भव है जबकि सार्वजनिक निर्माण कार्यों तथा जनोपयोगी सेवाओं पर किये जाने वाले सार्वजनिक व्यय में वृद्धि कर भी नहीं लगाये जा सकते क्योंकि इससे व्यक्तियों में कार्य करने तथा विनियोग करने की प्रेरणा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा जो प्रभावकारी माँग में और कमी करेगा। अतः सरकार के समक्ष एक ही विकल्प होता है कि वह सार्वजनिक ऋण लेकर अधिक से अधिक व्यय करे। फलस्वरूप प्रभावकारी माँग में वृद्धि होगी तथा कीमतें जाती हैं। इस प्रकार सरकार मन्दी से अर्थव्यवस्था को बाहर निकालने में समर्थ होती है।

(9) मुद्रास्फीति को समाप्त करने हेतु—मुद्रास्फीति मन्दी के ठीक विपरीत स्थिति है। मुद्रास्फीति में वस्तुओं तथा सेवाओं की कीमत में वृद्धि होती है। अतः सरकार जनता से ऋण लेकर उनकी क्रय-शक्ति में कमी कर सकती है और इस प्रकार यह कीमतों में वृद्धि को रोक सकती है। किन्तु ध्यान रहे यह नीति उसी समय साफल होती है जब सरकार सार्वजनिक ऋण से प्राप्त राशि को उत्पादकीय कार्यों में लगाती है।

(10) राजनीतिक क्षेत्र में मधुर सम्बन्ध स्थापित करने हेतु—सार्वजनिक ऋण का उद्देश्य राजनीतिक क्षेत्र में मधुर सम्बन्ध स्थापित करना भी होता है। सार्वजनिक ऋणों से पैत्रीपूर्ण सम्बन्ध, पारस्परिक सहयोग तथा निर्भरता की भावना उत्पन्न होती है।

संक्षेप में, सामान्यतः सार्वजनिक ऋण चालू व्ययों को पूरा करने के लिए, संकटकालीन परिस्थितियों का सामना करने के लिए, उत्पादक कार्यों के लिए, सार्वजनिक सेवाओं के लिए और आर्थिक स्थिरता के लिए प्राप्त किये जाते हैं। लर्नर (Lerner) ने सार्वजनिक ऋणों के सम्बन्ध में लिखा है कि सार्वजनिक ऋणों का उद्देश्य धन प्राप्त करना नहीं होना चाहिए वरन् आर्थिक जीवन को सन्तुलित बनाने के लिए सार्वजनिक ऋण प्राप्त करने चाहिए। सार्वजनिक ऋणों के द्वारा मुद्रास्फीति के समय व्यक्तियों से अतिरिक्त धन प्राप्त करके सामान्य चाहिए। सार्वजनिक ऋणों के द्वारा मुद्रास्फीति तथा मुद्रा-संकुचन दोनों स्थितियों में सार्वजनिक ऋण का महत्वपूर्ण स्थान होता है।

## सार्वजनिक ऋण के सिद्धान्त

### [Principles of Public Debt]

सरकार जब ऋण प्राप्त करती है अथवा उसे वापस करती है तो उसका ढंग ऐसा होना चाहिए कि उससे अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े अर्थात् अर्थव्यवस्था पर मुद्रास्फीति अथवा मुद्रा अवस्फीति सम्बन्धी प्रभाव कम पड़े तथा सरकार को उसकी आवश्यकतानुसार धन प्राप्त हो जाये। सार्वजनिक ऋणों के लिए सरकार को यह भी निर्णय करना होता है कि उसका स्वरूप कैसा हो, ऋण किन शर्तों पर प्राप्त किये जायें, ऋणों का शोधन किस प्रकार हो, आदि। दूसरे शब्दों में, सरकार को सार्वजनिक ऋणों के ढाँचे सम्बन्धी विशेषताओं का निर्धारण करना होता है, इसे सार्वजनिक ऋण व्यवस्था भी कहते हैं। सार्वजनिक ऋण व्यवस्था के अनेक सिद्धान्त दिये गये हैं, जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं :

(1) न्यूनतम ब्याज लागत—इस सिद्धान्त के अनुसार सरकार इस दशा में होनी चाहिए कि उसे आवश्यकतानुसार ऋण प्राप्त हो सकें तथा वह उसे वापस या शोधन कर सके, परन्तु यह सभी कार्य न्यूनतम ब्याज लागत पर होने चाहिए। सार्वजनिक ऋणों में ब्याज की लागत को न्यूनतम रखना बहुत महत्वपूर्ण होता है। इसका कारण है कि ब्याज अदायगी के लिए सरकार या तो नये कर लगाती है अथवा पुराने करों की दरों में वृद्धि करती है। यदि ब्याज का भार अधिक होगा तो कर भी अधिक लगाने होंगे। अधिक कर लगाने पर व्यक्तियों की कार्य करने व बचत करने की क्षमता एवं इच्छा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा और विनियोग एवं उत्पादन होत्साहित होगा। अतः सरकार को अपने ब्याज की लागत न्यूनतम रखनी चाहिए जिससे व्यक्तियों पर कर भार कम पड़े और अर्थव्यवस्था पर कम प्रतिकूल प्रभाव पड़े।

सार्वजनिक ऋणों की ब्याज लागत न्यूनतम उस दशा में सम्भव होती है जबकि बाजार में ब्याज दरें नीची हों क्योंकि तभी सरकार अपने बॉण्ड नीची ब्याज दरों पर जारी करके बाजार से ऋण प्राप्त कर सकती है। अतः इसके लिए देश के केन्द्रीय बैंक को इस बात के लिए प्रेरित किया जा सकता है कि वह बैंक दर नीची निर्धारित करने के माध्यम से ब्याज दर नीची रखे। परन्तु सस्ती ब्याज दर नीति अपनाने पर अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति फैलने का भय रहता है और यदि अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार की दशा है तो मुद्रास्फीति बहुत तेजी से फैलती है। अतः कम ब्याज दर नीति का सहारा बहुत सोच-समझकर लिया जाना चाहिए। अर्थव्यवस्था पर इसके प्रतिकूल प्रभाव कम से कम पड़े इसका ध्यान रखना चाहिए।

(2) विनियोगकर्ताओं की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि—सार्वजनिक ऋणों के प्रबन्ध में विनियोगकर्ताओं की आवश्यकता एवं इच्छा को ध्यान में रखने पर बल दिया जाता है। जब ऐसा होगा तभी सरकार

## 68 यूनीफाइड अर्थशास्त्र—द्वितीय वर्ष (चतुर्थ सेप्टेम्बर)

सार्वजनिक ऋण का प्रबन्ध नीक प्रकार से कर सकेगी अन्यथा सरकार को ऋण पर्याप्त उपलब्ध नहीं होता। अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो जायेंगी।

सरकार जब अपने अल्पकालीन ऋणों को दीर्घकालीन ऋणों में परिवर्तित करती है तो विनियोगकर्ताओं को ऊची लाज अदा करे अथवा अन्य मुविधाएँ उपलब्ध कराये। सरकार ऐसी व्यवस्था करे कि ऋण-पत्र को अपने बत्तमान ऋणों को बिना किसी हानि के आसानी से नकदी में परिवर्तित करके पुनः वर्णे ऋण पत्र कर सकें, इससे भी सार्वजनिक ऋणों की मात्रा पूर्वकृत बनी रहती है।

सरकार जब सार्वजनिक ऋणों के प्रबन्ध में विनियोगकर्ताओं की आवश्यकता को ध्यान में नहीं रखता है तो प्रतिभूति बाजार में अव्यवस्था फैल जाती है, क्योंकि बाण्ड भारक अपनी प्रतिभूतियों को अव्यवस्थित नहीं से इधर-उधर बैचकर नकदी प्राप्त करने में संलग्न हो जाते हैं। परन्तु यदि अधिक ब्याज दर देकर विनियोगकर्ताओं की आवश्यकता को ध्यान में रखा जाता है तो ब्याज लागत बढ़ जाती है। इस समस्या से निपटने के लिए लोग परिपक्वता पर ब्याज दर कम करने का तर्क देते हैं, परन्तु वह ठीक नहीं है इससे सरकार की विवरणीय प्रभावित होती है। इसके भुगतान हेतु नयी मुद्रा जारी की जाती है या करों को बढ़ाया जाता है तो अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति एवं अपस्फीति फैलने का भय रहता है। अतः सार्वजनिक ऋणों के शोधन में समुचित सलाह के द्वारा ही इस समस्या से निपटना चाहिए।

(3) अल्पकालीन ऋण का दीर्घकालीन ऋण में निधिकरण—सार्वजनिक ऋण व्यवस्था इस प्रकार की जानी चाहिए कि वह अल्पकालीन ऋण का दीर्घकालीन ऋण में निधिकरण करने में अधिक से अधिक सहायक हो। परन्तु ऐसा करते समय आर्थिक स्थिरता पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े इसका ध्यान रखा जाना चाहिए। उदाहरणार्थ, इंग्लैण्ड में जारी बेमियादी बाण्ड जो कभी परिपक्व नहीं होते हैं की तरह निधिकरण किया जाय परन्तु अर्थव्यवस्था में जो निजी अल्पकालीन ऋण होता है वह पूरे मौद्रिक प्रबन्ध को जटिल बना देता है, अब यह इतना आसान नहीं होता है।

सरकार द्वारा अल्पकालीन ऋण का दीर्घकालीन ऋण में निधिकरण करने पर दीर्घकालीन ब्याज बढ़ने लगती हैं जिससे ब्याज लागत बढ़ती है एवं अल्पकालीन ऋण की माँग कम होने के कारण उसकी व्याज दरें गिरने लगती हैं। दीर्घकालीन ऋणों की ब्याज दरें अत्यधिक ऊँची हो जाने के कारण निजी विनियोग एवं व्याज की दर कम होने लगती है जिससे अर्थव्यवस्था में मन्दी फैलने लगती है। अतः इन नीति का सहारा लेते समझ इस बात का ध्यान रखा जाय कि दीर्घकालीन ब्याज दरों में बहुत अधिक वृद्धि न हो सके ताकि निजी विनियोग एवं ब्याज दर कम न हों। हाँ, यदि निजी विनियोग कम करने हों तो इस नीति का सहारा लिया जा सकता है। इस नीति को अपनाते समय यह भी ध्यान रखा जाय कि देश की अल्पकालीन पूँजी का बहिर्गमन न हो।

(4) राजकोषीय एवं मौद्रिक नीति से समन्वय—आर्थिक विकास एवं स्थिरता के लिए सार्वजनिक ऋण नीति का राजकोषीय एवं मौद्रिक नीति के साथ उचित समन्वय होना अति आवश्यक है। उदाहरणार्थ, यह सरकार ब्याज लागत को कम करने के लिए केन्द्रीय बैंक को बैंक दर के माध्यम से ब्याज दर नीची निधारित करने को बाध्य करती है तो स्वाभाविक है कि अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति तेजी से फैलेगी। ऐसे में सरकार राजकोषीय नीति में अधिक कर एवं कम व्यय करके तथा मौद्रिक नीति में प्रतिभूतियों के विक्रय एवं तरल कोषानुपात को बढ़ाकर आदि के द्वारा इन मुद्रास्फीतिजनक प्रभावों को कम कर सकती है। इसी प्रकार आर्थिक विकास के लिए इन तीनों नीतियों के समन्वित प्रयास किये जाने आवश्यक हैं।

(5) परिपक्व ऋणों का वितरण एवं ऋणों का स्वामित्व—यदि सार्वजनिक ऋणों का बड़ा हिस्सा अल्पकालीन ऋण हैं और कुल ऋणों का बड़ा भाग बैंकों द्वारा रखा गया है तो ऋण के नकद रूप में बने होने की सम्भावना बनी रहती है और अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति दबाव बन जाते हैं। समस्या विकट तब हो जाती है जबकि मुद्रास्फीति को नियन्त्रित करना अति आवश्यक होता है। दूसरे शब्दों में, ऋणों की अत्यधिक तरलता मुद्रास्फीति उपायों को जटिल बना देती है। ऐसे में सरकार की ऋण क्रय नीति भी सफल नहीं होती है। अतः सरकार ऋण तरलता को कम करने हेतु ऋणपत्रों की कीमत बढ़ाकर तथा व्यक्तियों के ऋणों को नकदी में बदलने के लिए प्रेरित करके कर सकती है। परन्तु सरकार इस नीति को बहुत सावधानी से अपनाये इसकी अति आवश्यकता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि सार्वजनिक ऋणों की व्यवस्था इस प्रकार की जानी चाहिए कि अर्थव्यवस्था पर उसके वांछित प्रभाव हों तथा अवांछित प्रभावों को कम किया जा सके।

## सार्वजनिक ऋण का शोधन [Redemption of Public Debt]

ऋण के शोधन का अर्थ है ऋण की वापस अदायगी। प्राप्त ऋणों को वापस करना सरकार का एक नैतिक कर्तव्य है। सरकार को ऋणों की वापसी के लिये हर सम्भव प्रयास करने चाहिए क्योंकि ऋणों का शोधन जब तक नहीं होगा तब तक उसका भार वर्तमान पीढ़ी से भावी पीढ़ी पर हस्तान्तरित होता रहेगा। अतः ऋणों का भुगतान करना सरकार के लिये अत्यन्त आवश्यक है। सार्वजनिक ऋणों का शोधन निम्नलिखित रीतियों के द्वारा सम्भव है :

(1) **ऋण की अस्वीकारिता (Repudiation of Debt)**— सार्वजनिक ऋण की अस्वीकारिता का अर्थ है सरकार द्वारा ऋण की अदायगी से इन्कार करना। ऋण की अस्वीकारिता दो प्रकार की हो सकती है—(i) पूर्ण अस्वीकारिता, तथा (ii) आंशिक अस्वीकारिता। यदि सरकार ऋण के भुगतान के सम्बन्ध में पूरी तरह से इन्कार कर दे, अर्थात् मूलधन तथा ब्याज में से किसी का भी भुगतान न करे तो इसे ऋण की पूर्ण अस्वीकारिता कहेंगे। सन् 1917 में सोवियत सरकार ने ऋणशोधन की पूर्ण अस्वीकारिता रीत का सहारा लिया था जबकि उसने जाकालीन ऋणों को अदा करने से इन्कार कर दिया था। आंशिक अस्वीकारिता में सरकार अपने ऋण सम्बन्धी दायित्वों को पूरा करने में आंशिक रूप से मना कर देती है। सन् 1930 के मन्दी-काल में ऋण की आंशिक अस्वीकारिता रीत का सहारा लिया गया था। आंशिक अस्वीकारिता में कई बातें शामिल होती हैं; जैसे— ब्याज की दर में कमी करना, मूलधन की राशि का घटाना, ऋण चुकाने की अवधि बढ़ा देना, मुद्रास्फीति के द्वारा मुद्रा के मूल्य को कम करना इत्यादि।

वास्तव में, ऋण की अस्वीकारिता की रीत यदा-कदा ही अपनायी गयी है। यह रीत देखने में तो अति सरल लगती है किन्तु इसके परिणाम बड़े घातक होते हैं। ऋणों की अदायगी से इन्कार करने पर देश की जनता में असन्तोष फैलने का भय रहता है तथा विद्रोह की सम्भावना रहती है। विदेशी सरकारें अपने ऋण को वसूल करने के लिये आर्थिक प्रतिबन्ध तथा सैनिक कार्यवाही जैसे तरीकों की मदद ले सकती हैं। सरकार की देश तथा विदेश में साख समाप्त हो जाती है।

(2) **ऋण का पुनर्शोधन (Refunding of Debt)**— जब किसी ऋण की वापसी की तिथि आ जाती है तथा सरकार उस ऋण को वापस करने की स्थिति में नहीं होती है तो वह पुराने ऋणपत्रों के स्थान पर नये ऋणपत्र जारी करके ऋण के भुगतान को आगे के लिये टाल देती है। इस क्रिया को ही 'ऋण का पुनर्शोधन' कहते हैं। इस प्रकार ऋण-पुनर्शोधन के अन्तर्गत पुराने ऋणपत्रों के स्थान पर नये ऋणपत्र बदल दिये जाते हैं। व्यवहार में पुनर्शोधन की दो रीतियाँ होती हैं—(i) पुराने ऋणदाता ही नये ऋणपत्र लेने को तैयार हो जायें, (ii) यदि पुराने ऋणदाता नये ऋणपत्र लेने को तैयार न हों तो नये ऋणपत्र बाजार में बेचकर जो धनराशि प्राप्त हो उससे पुराने ऋण का भुगतान कर दिया जाय।

ऋण-पुनर्शोधन की रीति उस समय उपयोगी होती है जबकि (i) ऋण के भुगतान का समय आ गया है किन्तु सरकार के पास धन का अभाव है। (ii) सरकार ने ऋण स्थायी पूँजी के रूप में कहीं विनियोजित कर रखा है तथा वह उसे बनाये रखना चाहती है। (iii) ऋण का भुगतान करना सरकार राजकोषीय नीति की दृष्टि से उचित न समझती हो; जैसे—मुद्रास्फीति के समय।

(3) **ऋण का परिवर्तन (Conversion of Debt)**— जब सरकार ऋण की विभिन्न शर्तों में परिवर्तन करने हेतु ऋण वापसी की तिथि से पहले पुराने ऋणों के बदले नये ऋण जारी करती है तो इसे 'ऋण का परिवर्तन' कहते हैं। ऋण परिवर्तन का सहारा सरकार लाभ प्राप्त करने हेतु लेती है। उदाहरणार्थ, कभी-कभी सरकार युद्ध के समय ऊँची ब्याज-दर पर ऋण प्राप्त कर लेती है किन्तु कुछ समय पश्चात् (युद्ध के बाद) जब मुद्रा बाजार में ब्याज की दर गिर जाती है तो सरकार के लिये यही लाभप्रद होता है कि वह सस्ते ऋणों से महँगे ऋणों का परिवर्तन कर ले। अतः सरकार बाजार से ऊँची ब्याज-दर के नये ऋण प्राप्त करके उनसे महँगे ऋणों का भुगतान कर देती है। इससे न केवल सरकार के ऋण-भार में कमी होती है बल्कि आय के असमान वितरण में भी कमी आती है।

ऋण-पुनर्शोधन तथा ऋण-परिवर्तन में अन्तर—इन दोनों रीतियों में प्रायः भेद नहीं किया जाता है। किन्तु कुछ अर्थशास्त्री इनमें अन्तर कहते हैं। ब्यूहलर के शब्दों में, "पुनर्शोधन आवश्यक रूप से ऋण के भुगतान

को स्थगित करता है जबकि ऋण-परिवर्तन में ऋण-परिपक्वता के स्थगन के अतिरिक्त ब्याज की दरें तथा अन्तर्गत जातों की पुनर्व्यवस्था की जाती है। 'ऋण-पुनर्शोधन' तथा 'ऋण-परिवर्तन' को किसी भी एक कार्यवाही के अन्तर्गत संयुक्त किया जा सकता है। इस स्थिति में इसे 'ऋण-पुनर्शोधन' अथवा 'ऋण-परिवर्तन' कहा जा सकता है।

#### (4) ऋण का वास्तविक भुगतान (Actual Repayment of Debt)—

आशय उन रीतियों से होता है जिसमें ऋण-भार को वास्तव में तथा डिचित रूप में कम किया जा सकता है। जिन रीतियों का उल्लेख किया गया है उनका ऋणों की वास्तविक अदायगी से कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः नीचे हम उन रीतियों का विवेचन करेंगे जो सार्वजनिक ऋण की वास्तविक अदायगी के लिये प्रयोग में लायी जा सकती हैं :

#### (अ) शोधन-कोष (Sinking Fund)—

ऋणों की नियमित अदायगी के लिये एक पद्धति, सामान्यतः अपनायी जाती है, शोधन-कोष या ऋण-परिशोधन कोष की स्थापना है। इसके अन्तर्गत सरकार ऋण की अदायगी या वापसी के लिये एक कोष की स्थापना करती है जिसमें प्रति वर्ष एक निश्चित राशि डालकर चुकाने के लिये जमा की जाती है। राशि जमा करने की व्यवस्था इस प्रकार की जाती है कि ऋण के भुगतान की तिथि आने पर उसमें इतनी धनराशि जमा हो जाय जिससे मूलधन तथा ब्याज की अदायगी की जा सकती है।

शोधन-कोष में जमा की जाने वाली धनराशि करों से प्राप्त की जानी चाहिए। यदि इसमें नये राशि नहीं होता है, केवल पुराने ऋण का स्थान नये ऋण ले लेते हैं।

शोधन-कोष बनाने के लिये दो तरीकों का प्रयोग किया जा सकता है—(i) यदि सरकार को वार्षिक चलाय में कुछ बचत हो तो उसे शोधन-कोष में डाल दिया जाय, (ii) सरकार प्रति वर्ष कुछ राशि इस कोष में डालती रहे चाहे बचत हो या न हो। इन दोनों रीतियों में से दूसरी रीति ज्यादा अच्छी है। प्रथम रीति को उपयुक्त नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसमें बजट में बचत होने पर ही कोष में राशि डाली जा सकती है, जो बहुत अनियन्त्रित होता है। इसके अतिरिक्त भारत जैसे विकासशील देश में तो बचत की कल्पना ही नहीं की जा सकती। अब दूसरी रीति ही ज्यादा उपयुक्त है। शोधन-कोष में निश्चित राशि डालने के निम्न रूप हो सकते हैं—(i) वार्षिक अंशदान की रीति निर्धारित कर दी जाय, (ii) उस मद को निश्चित कर दिया जाय जिससे होने वाली अपेक्षा शोधन-कोष में डाली जायेगी, (iii) शोधन-कोष में डाली जाने वाली राशि प्रति वर्ष बढ़ती हुई हो अर्थात् अंशदान प्रगतिशील होना चाहिए।

शोधन-कोष की स्थापना में कुछ समस्याएँ भी उत्पन्न हो सकती हैं। इसमें राशि जमा करने के लिये सार्वजनिक आगम में वृद्धि की समस्या हो सकती है। नये कर लगने पर या पुराने करों की दरों में वृद्धि करने पर जनता द्वारा विरोध हो सकता है। इसके अतिरिक्त कोष में जमा हुई राशि का अन्य कार्यों के लिये उपयोग न करना भी सरकार के लिये अत्यन्त कठिन होता है।

(ब) सार्वजनिक आगम में बचत द्वारा (Through Public Savings)—यदि सरकारी बजट में आपकी मात्रा व्यय से अधिक है तो इस बचत द्वारा ऋण का भुगतान सुविधा से किया जा सकता है। किन्तु इस रीति से केवल छोटे ऋणों का ही भुगतान किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त वर्तमान समय में आधिक्य बजट शास्त्र ही बनाया जाता हो जबकि सार्वजनिक व्यय में निरन्तर वृद्धि हो रही है। सरकार यदि मन्दी के समय बचत का बजट बनाती है तो वह सरकार की अकुशलता का ही परिचायक है क्योंकि उस समय वैसे ही समाज की क्रय-शक्ति में वृद्धि की समस्या होती है। अतः इस विधि को अपनाने पर मन्दी के समय ऋण की वापसी करने भी सम्भव नहीं होता है।

(स) मियादी वार्षिकी (Terminal Annuities)—ऋण भुगतान की एक रीति यह है कि सरकार इस भुगतान की वार्षिक किसी बांध देती है जिससे एक निश्चित अवधि तक ऋण की राशि पूरी वापस हो जाय। इन वार्षिक किसी को ही मियादी वार्षिकी कहते हैं। इसमें सरकार ऋणों की वापसी के लिये या तो परिषद ऋणों का क्रमानुसार भुगतान करती जाती है अथवा परिपक्व ऋणों में से लॉटरी निकाल कर उनका भुगतान करने से पूर्व ही वह वापस किये जा चुके होते हैं।